मुद्रित हैं जो इस प्रकार हैं—"सिंघ आपकी छाया कूपमै देष कारकै आपही अपणास्वरूप भूलि करिकै आपही कूपमै पड़के दुष अनुभव भोग मरता है।"

इसका हिन्दी अनुवाद है—सिंह अपनी छाया कुएँमें देखकर तथा स्वयं अपना स्वरूप भूलकर कुएँमें गिरता है और दुःखी होकर मरता है।

दूसरे चित्रके नीचे लिखा है—"वानर कूंभ मै मूठी बाँधि सो छोडता नाहीं जाणता है कै कोई मोकूं पकड लिया।"

इसका अनुवाद है—बन्दरने घड़ेमें मुट्ठी बाँधी है, उसे छोड़ता नहीं और मानता है कि मुझे किसीने पकड़ लिया।

ग्रन्थमें नयके द्वारा आत्मवस्तुका जो वर्णन किया गया है, वह "प्रवचनसार" की तत्त्वप्रदीपिका टीकाके अनुसार है। पं० बनारसीदासकृत "समयसार नाटक" के अनेक उद्धरण दोहा-कवित्त रूपमें ज्यों-के-त्यों उद्धृत लक्षित होते हैं। इनके अतिरिक्त आचार्यकल्प पं० टोडरमल कृत "मोक्षमार्गप्रकाशक" एवं "त्रिलोकसार", "द्रव्यसंग्रह", सर्वार्थसिद्धि तथा समयसार आदि ग्रन्थोंके आधारपर इस ग्रन्थकी रचना परिलक्षित होती है। अतः केवल दृष्टान्तोंका ऊहापोह या आलोचना न कर हम विषयकी गम्भीरताका विचार-कर समझनेका प्रयत्न करें, तो निःसन्देह "सम्यग्ज्ञान" पर प्रकाश डालनेवाला यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सिद्ध होता है। सम्यग्ज्ञानकी महिमा, उसका स्वरूप और प्राप्तिका वर्णन बहुत ही सरल और सुन्दर शब्दोंमें किया गया है। अतः स्वाध्यायियोंको अवश्य पढ़ना चाहिए।

●

सप्ततिकाप्रकरण : एक अध्ययन

डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच

श्रद्धेय पण्डित फूलचन्द्रजीका साहित्यिक क्षेत्र केवल दिगम्बर साहित्य तक ही सीमित नहीं है, वरन् श्वेताम्बरीय साहित्यका भी उनका अध्ययन गहन, मनन पूर्ण तथा तुलनात्मक है। सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० सुख-लाल संघवीकी प्रेरणासे उन्होंने छठे कर्मग्रन्थका सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद अत्यन्त सफलताके साथ सम्पन्न किया। प्रकाशक बा० दयालचन्द जौहरीने पण्डितजीके सम्बन्धमें अपना अभिप्राय निम्नलिखित शब्दोंमें व्यक्त किया है—

"पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री अपने विषयके गम्भीर अभ्यासी हैं। उन्होंने दिगम्बरीय कर्मशास्त्रोंका तो आकलन किया ही है, परन्तु इसके साथ ही श्वेताम्बरीय कर्मशास्त्रके भी पूर्ण अभ्यासी हैं। अपने इस अनुवादमें उन्होंने अपने चिरकालीन अभ्यासका पूर्ण उपयोग किया है और प्रत्येक दृष्टिसे ग्रन्थको सर्वाङ्ग सम्पूर्ण बनानेका पूर्ण प्रयत्न किया है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस टीकाकी सबसे बड़ी विशेषता है—विशेषार्थ। यद्यपि विशेषार्थ अर्थ लिखते समय पण्डितजीने श्वेताम्बर आगम-साहित्यके सुप्रसिद्ध टीकाकार मलयगिरिकी टीकाको सम्मुख रखकर लिखा है, फिर भी, इसकी अपनी विशेषता है। कहीं-कहीं पर पं० जयसोम रचित गुजराती टब्बाका भी उपयोग किया गया है। इतनेपर भी जहाँ-कहीं विषय स्पष्ट नहीं हुआ है, वहाँ कोष्ठकोंका प्रयोग किया गया है। क्योंकि कर्मशास्त्रका विषय ऐसा जटिल है कि सरलतासे सबको समझमें नहीं आता। अतः सर्वत्र सरल शब्दोंमें स्पष्ट करनेका पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

इस टीकाकी दूसरी विशेषता है—टिप्पणियोंका प्रयोग। टिप्पणियाँ दो प्रकारकी हैं— प्रथम वे टिप्पणियाँ हैं जिनमें सन्दर्भित विषयका गाथाओंके साथ साम्य सूचित होता है। दूसरे प्रकारकी टिप्पणियाँ वे हैं जिनमें श्वेताम्बर-दिगम्बर विषयक मत-भेदकी चर्चा की गई है। ये सभी टिप्पणियाँ अत्यन्त उपयोगी हैं। शोध तथा अनुसन्धान करने वाले इस विषयके शोधार्थियोंके लिए इस प्रकारकी सामग्री विशेष रूपसे महत्त्वपूर्ण हैं। सभी टिप्पणियाँ हिन्दीमें हैं और सम्बद्ध विषयकी पुष्टिमें आगमके प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं।

ऐसे आलोचनात्मक तथा गम्भीर विषयका सांगोपांग विवेचन थोड़े-से शब्दोंमें प्रस्तुत करना साधारण लेखकका कार्य नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, मतभेदसे सम्बन्धित विषयों पर सन्तुलित भाषामें निष्पक्ष रूपसे यत्र तत्र संकेत या निर्देश करना प्रकाण्ड विद्वान्का ही कार्य हो सकता है। वास्तवमें बिना भेद-भावके अनेक दिगम्बर विद्वानोंने श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों तरहके साहित्य की भरपूर सेवा की है। पं० कैलाशचन्द्रजीने सन् १९४० के लगभग पंचम कर्मग्रन्थका हिन्दी अनुवाद किया था और उक्त षष्ठ कर्मग्रन्थका अनुवाद पं० फूलचन्द्रजीने सन् १९४२ में पूर्ण किया। उन दिनों प्रकाशन की व्यवस्था न होनेसे सन् १९४८ से पूर्व प्रकाशित नहीं हो सका। इसका प्रकाशन श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरासे किया गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि विश्व-साहित्यमें 'कर्मके' सम्बन्धमें जैसा स्वतन्त्र एवं सांगोपांग विशद विवेचन जिनागममें उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं है। जैनदर्शन कर्मको स्वतन्त्र रूपसे स्वीकार करता है। यद्यपि भारतीय दर्शन कर्मके अस्तित्वको स्वीकार करते हैं, किन्तु उससे सम्बन्धित विस्तृत तथा स्वतन्त्र वर्णन उनमें नहीं पाया जाता। यह सुनिश्चित है कि तीर्थंकर महावीरकी दिव्यध्वनिसे प्रसूत उपदेशोंका संकलन करते समय कर्म विषयक साहित्यकी भी स्वतन्त्र संकलना की गई थी। उनके सम्पूर्ण उपदेश द्वादशांगमें निबद्ध हुए थे। अन्तिम बारहवां अंग बहुत विशाल था। उसके पाँच भेद थे—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। इनमेंसे पूर्वगतके चौदह भेद थे। इन भेदोंमेंसे आठवेंका नाम कर्मप्रवाद था। कर्म विषयक सम्पूर्ण साहित्य इसीके अन्तर्गत संकलित किया गया था। किन्तु कालके सुदीर्घ अन्तरालमें धारणा-शक्तिके ह्रास होनेके साथ ही शनैः-शनैः कर्म-प्रवादका पूर्ण लोप हो गया। वाचनाकी क्रमिक परम्पराके आधार पर केवल अग्रायणीयपूर्व और ज्ञानप्रवादपूर्वका ही कुछ अंश अवशिष्ट रहा। वर्तमानमें उपलब्ध मूल कर्म-साहित्यको संकलनाका आधार अग्रायणीय और ज्ञानप्रवाद कहा जा सकता है। किन्तु ऐसा निर्णय करते समय बहुत छान-बीनकी आवश्यकता है। पं० फूलचन्द्रजीके शब्दोंमें अग्रायणीय पूर्वकी पाँचवीं वस्तुके चौथे प्राभृतके आधारसे षट्खण्डागम, कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका इन ग्रन्थोंका संकलन हुआ था। और ज्ञानप्रवाद पूर्वकी दसवीं वस्तुके तीसरे प्राभृतके आधार से कषायप्राभृत का संकलन हुआ था। इनमेंसे कर्मप्रकृति, यह ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परामें माना जाता है। कषायप्राभृत और षट्खण्डागम ये दो दिगम्बर परम्परामें माने जाते हैं तथा कुछ पाठ-भेदके साथ शतक और सप्ततिका ये दो ग्रन्थ दोनों परम्पराओंमें माने जाते हैं। वास्तव में समय ज्यों-ज्यों बीतता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है त्यों-त्यों मान्यता विषयक भेद-परम्पराकी खाई चौड़ी होती जाती है और हम भेद प्रदर्शित करने वाले मान्य ग्रन्थोंको भी छोड़ते जाते हैं। क्योंकि आजकी पीढ़ीको इतना अवकाश कहाँ है जो यह निर्णय कर सके कि समीचीन क्या-कौन है ? अतः ऐसी रचनाओंको दिनोंदिन भूलते जाते हैं या भुलाते जा रहे हैं। क्यों न भूलें ? इस उलझनमें कौन पड़ना चाहता है ? बौद्धिक विवाद या मतभेदोंका सिरनामा पुराने पण्डितोंके माथे ही था। भले ही पण्डितजी इसके अपवाद रहे हों ? वास्तविकताको कौन जानता हुआ सामने नहीं रखना चाहेगा। कलमके धनी और आगम तथा सिद्धान्तके रहस्यको हृदयंगम करने वाले पण्डितजीने इन सभी तथ्योंका पूर्ण विवरण प्रस्तुत करनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता प्रदर्शित नहीं होने दी। इस दृष्टिसे उनकी प्रस्तावना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

लगभग साठ पृष्ठोंकी प्रस्तावनामें पण्डितजीने जहाँ कर्म-साहित्यकी क्रम-परम्पराका निर्देश किया है, वहीं "सप्ततिका" संज्ञक अन्य रचनाओंका भी विचार किया गया है। केवल यही नहीं, सप्ततिकाओंमें संकलित विषयका आपने सूक्ष्मता तथा गम्भीरताके साथ विवेचन किया है। उदाहरणके लिए, सप्ततिकाका नाम ७० गाथाओंके आधार पर होने पर भी विभिन्न स्थानोंसे प्रकाशित गाथाओंकी संख्याकी भिन्नता, अन्तर्भाष्य गाथाओंके सम्मिलित हो जानेसे चूर्णियोंमें गाथाओंकी संख्यासे टीकाओंकी गाथा-संख्याकी भिन्नता परिलक्षित होना, इस सप्ततिकामें उपशमना और क्षपणाकी कुछ मुख्य प्रकृतियोंका ही निर्देश होना, किन्तु दिगम्बर-परम्पराको सप्ततिकामें सम्बन्धित सभी प्रकृतियोंकी संख्याका निर्देश, प्राकृत पंचसंग्रहकी प्राचीनता, दिगम्बर परम्पराके पंचसंग्रहका संकलन सम्भवतः धवलाके पूर्व ही हो गया था ये कुछ उल्लेख ऐसे तथ्य हैं जिनके आधार पर गोम्मटसार (जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड) की प्रामाणिकता तथा विषयके सांगोपांग का विवरण दिगम्बर-परम्परा में ही उपलब्ध होता है।

कर्म-मीमांसाके अन्तर्गत पण्डितजीने बन्ध होनेके लिए जीव और पुद्गलकी योग्यताको ही मूल रूपमें माना है। जीवमें मिथ्यात्वादि रूप योग्यता संश्लेषपूर्वक ही होती है, इसलिये उसे अनादि माना गया है। किन्तु पुद्गलमें स्निग्ध या रूक्ष गुण रूप योग्यता संश्लेषके बिना भी पाई जाती है, इसलिये वह अनादि और सादि दोनों प्रकारकी मानी गई है। संसार और कर्मका अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध है। जब तक यह सम्बन्ध है, तब तक जीवके राग-द्वेष रूप परिणाम होते रहते हैं। परिणामोंसे कर्म बंधते हैं। कर्मसे गतियों में जन्म लेना पड़ता है, भव-भ्रमण होता है। संसारी जीवके प्रत्येक समयमें जो परिस्पन्दात्मक क्रिया होती है, वह कर्म कही जाती है। परिस्पन्दात्मक क्रिया सब पदार्थों में नहीं होती। यह क्रिया पुद्गल और संसारी जीवके ही पाई जाती है। जीव की विविध अवस्थाओंके होनेका मुख्य कारण कर्म है। अपने-अपने कर्मके अनुरूप भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं।

उक्त कर्म-मीमांसाके प्रसंगमें पण्डितजीने एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा उठाया है कि कर्मकी कार्य-मर्यादा क्या है ? किन्तु अधिकतर विद्वानोंका यह विचार है कि बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति भी कर्मसे होती है। इस सम्बन्धमें पण्डितजीने "मोक्षमार्गप्रकाश" तत्त्वार्थराजवार्तिक, पुराणादिका उल्लेख किया है और बताया है कि कर्मके दो भेद हैं—जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी। जीवको विभिन्न अवस्थाओं तथा परिणामोंके होनेमें जो निमित्त होते हैं वे जीवविपाकी कर्म हैं। जिससे विविध प्रकारके शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वासकी प्राप्ति होती है वे पुद्गलविपाकी कर्म हैं। इन दोनोंमें से एक भी बाह्य सामग्रीकी प्राप्त करानेका कार्य नहीं करता है। अतः किसके परिणामसे बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति होना मानी जाये ? इसका समाधान करते हुए स्वयं पण्डितजी निष्कर्ष रूप में कहते हैं श्वेताम्बर कर्म-ग्रन्थोंमें भी इन कर्मोंका यही अर्थ किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है। ऐसी हालतमें इन कर्मोंको अनुकूल व प्रतिकूल बाह्य सामग्रीके संयोग-वियोगमें निमित्त मानना उचित नहीं है। वास्तवमें बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति अपने-अपने कारणोंसे होती है। इसकी प्राप्तिका कारण कोई कर्म नहीं है।

पण्डितजीने आचार्य वीरसेन स्वामी और आचार्य पूज्यपाद स्वामी दोनोंके मतोंका उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूपमें बताया (आज से ४२ वर्ष पूर्व) कि तत्त्वतः बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति न तो साता-असाताका फल है और न लाभान्तराय आदि कर्मके क्षय व क्षयोपशमका फल है; परन्तु बाह्य सामग्री अपने-अपने कारणों से प्राप्त होती है। अपने-अपने कारण क्या हैं? इनका भी पण्डितजीने उल्लेख किया है। हम सब जानते हैं कि पैसा कमाना हो, तो व्यापार या उद्योगके साधन जुटाना, रकमको व्याज पर लगाना, सेठ-साहुकार तथा व्यापारियोंसे मित्रता स्थापित करना आदि जितने बाह्य साधन हो सकते हैं और उनमेंसे जितने, जो कुछ हम अपना सकते हैं, उन सभी साधनोंसे बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति होती है। इस प्रत्यक्ष, लौकिक व्यवहारका अपलाप नहीं किया जा सकता। यदि बाहरी सामग्री देने वाले एक मात्र कर्म हों, तो औरोंको तो नहीं पर जैनोंको कम-से-कम हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना चाहिये था; कुछ कमाने-धमानेकी क्या आवश्यकता थी? आगममें व्यवहारकी सर्वथा अवहेलना नहीं है। इसी बातको स्पष्ट करते हुए पण्डितजी आगे लिखते हैं—

'यद्यपि जैनदर्शन कर्मको मानता है, तो भी वह यावत् कार्योंके प्रति उसे निमित्त नहीं मानता। वह जीवकी विविध अवस्थाएँ—शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, वचन और मन-इनके प्रति कर्मको निमित्त कारण मानता है। उसके मतसे अन्य कार्य अपने-अपने कारणोंसे होते हैं। कर्म उनका कारण नहीं है। उदाहरणार्थ, पुत्रका प्राप्त होना, उसका मर जाना, रोजगारमें नफा-नुकसानका होना, दूसरेके द्वारा अपमान या सम्मान किया जाना, अकस्मात् मकानका गिर पड़ना, फसलका नष्ट हो जाना, ऋतुका अनुकूल-प्रतिकूल होना, अकाल या सुकालका पड़ना, रास्ता चलते-चलते अपघातका हो जाना, किसीके ऊपर बिजलीका गिरना, अनुकूल व प्रतिकूल विविध प्रकारके संयोगों व वियोगोंका मिलना आदि ऐसे कार्य हैं, जिनका कारण कर्म नहीं है। भ्रम से इन्हें कर्मोंका कार्य समझा जाता है।

वास्तवमें जैनधर्ममें भावकी प्रधानता है, कर्मकी नहीं। अतः विद्वान् लेखकने जो मन्तव्य दिया है, वह जैन आगमोंसे ही उद्धृत है जो मान्य है।

संक्षेपमें, टीकाकी सभी विशेषताओंके साथ ही विवेचन भी अनुसन्धानपूर्ण तथा आगमकी सम्यक् दृष्टिको दर्शाने वाला है। आगमका सही निर्णय ही हमारे जीवनके लिए और धर्म-पालनके लिए उपयोगी रहा है, है और बना रहेगा।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org